संगीत की वैदिककालीन शिक्षण प्रणाली में नैतिकता

नीति गुप्ता
शोधार्थी, संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

शिक्षा एक सर्वपरिचित एवं सर्वविदित शब्द है। शिक्षा को सदा ही ऐसी प्रक्रिया माना गया है, जिससे खाली बर्तनों को भरा नहीं जाता अपितु दीप प्रज्वलित किया जाता है। मानव के संपूर्ण विकास का आधार शिक्षा है। ज्ञान, विद्या, अभ्यास व अनुभव से युक्त वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से योग्य व्यक्ति द्वारा अयोग्य व्यक्ति की वृतियों का परिष्करण (अलंकार) किया जाए। शिक्षा का सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक दृष्टि से व्यापक अर्थ है। शिक्षा मानव की सर्वांगीण उन्नति का एक ऐसा आधार है जो उसके व्यक्तित्व के विकास का कारण बनती है।

शिक्षा प्रकाश देने वाली मूलभूत प्रवृति है जो समग्र धरा को तेजोदीप्त कर देती है। इसीलिए सारी सृष्टि इस अनंत शक्ति का उपासक बन गया है। संपूर्ण समाज के शिक्षित होने से राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अधिक सुविधा होती है। शैक्षणिक प्रक्रिया मानव के अपने व्यक्तित्व का संतुलन बनाए रखने की योग्यता उत्पन्न कर उसे सभ्य, सुसंस्कृत, सुयोग्य एवं सहृदय होने का अधिकार प्रदान करती है।

शिक्षा का तात्पर्य केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने वाली न होकर मनुष्य के वास्तविक जीवन से भी जुड़ी हुई है जो मनुष्य में सर्वांगीण परिवर्तन लाने का एक उत्तम माध्यम है। शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार का होना आवश्यक है जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसके सर्वोपरि (सम्यक्) विकास के लिए मार्गदर्शित करे एवं अन्य किसी भी प्रकार से विश्व को लाभान्वित कराने वाली प्रवृति के लिए चिंतन के सभी द्वार खोले। महाकाव्य 'महाभारत' में शिक्षा के आवश्यक तत्वों को बताते हुए कहा गया है :–

अद्रोहः सर्वभूतानोकर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते।। (शान्तिपर्व 24,66)

अर्थात् व्यक्ति के आंतरिक गुणों में शील तथा विनय अर्थात् मन, कर्म, वचन से द्वेष न रखना, सब प्राणियों के प्रति प्रेम व अनुग्रह रखना तथा त्यागी व दानी होना आदि शिक्षा के वांछनीय तत्व हैं।

ऋग्वेद के अनुसार, ''शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वासी तथा स्वार्थहीन बनाती है। (Education is that, "which makes a man self-reliant and selfless."

शिक्षा एक सर्वव्यापी क्रिया है, जिसे संसार के समस्त प्राणी कम या अधिक मात्रा में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त प्राप्त करते है। समूचा विश्व एक महान् विद्यालय है, प्रत्येक व्यक्ति युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरूष सभी इसके शिक्षार्थी एवं शिक्षक हैं शिक्षा व्यक्ति को एक सभ्य, सुसंस्कृत, सुयोग्य एवं सहृदय व्यक्ति बनाती है। प्राचीन भारतीय इस तथ्य से भली भांति परिचित थे। इसीलिए उन्होंने शिक्षा की सुंदर व्यवस्था की।

शिक्षा समाज का दर्पण है। समाज को देखकर ही शिक्षण प्रणाली का अनुमान लगाया जा सकता है। प्राचीन भारत की शिक्षा प्रणाली ने वैदिक साहित्य के संरक्षण का काम किया। इस शिक्षण प्रणाली के कारण ही प्राचीन भारत में दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, रसायन, कला, वैद्यक, संगीत आदि क्षेत्रों में असाधारण विकास हुआ। मानसिक विकास की दृष्टि से सामान्य शिक्षा एवं मानसिक और आत्मिक शक्तियों के परिष्कार की दृष्टि से ललित कलाओं की शिक्षा महत्वपूर्ण है। इन दोनों प्रकार की शिक्षाओं से ही मानव चिन्तन, तर्क तथा समस्याओं के समाधान करने की कुशलता से सम्पन्न होने पर ही जीवन मूल्यों व जीवन–दृष्टि के गहन आदर्शों से परिचित होकर अपने व समाज के लिए एक उपयोगी इकाई सिद्ध होता है।

भारतीय संस्कृति व सभ्यता का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि मूलतः हमारी शिक्षा पद्धति का प्रारंभिक स्वरूप आश्रम केंद्रित गुरूकुल पद्धति के रूप में था। महाकाव्यों तथा शिक्षा ग्रंथों आदि से स्पष्ट होता है कि इस पद्धति के अंतर्गत सभी विषयों की शिक्षा के साथ संगीतकला की शिक्षा भी गुरूकुलों में देते थे।

यह तो सर्वविदित ही है कि संगीत के इतिहास को प्राचीन माना गया है। भारतीय संगीत की यात्रा एवं विकास भी अन्य कलाओं की तरह क्रमशः समयानुसार धीरे–धीरे हुआ है। प्राचीन वैदिक युग के ओमकार ध्वनि की सहायता से वह परिशुद्ध हुई। युग प्रवाह से उसके विविध रूप में परिवर्तन हुआ। इसके इतिहास का सर्वांगीण विवेचन अथवा यथार्थ चित्रण कर देना सरल कार्य नहीं है। यह कला ऐसी ध्वनि अथवा ध्वनियों का विवेचन करती है जो कि कर्णप्रिय और मनमोहक होती है।

संगीत शिक्षा के प्राचीन स्वरूप तथा उसके मूलभूत तत्वों का बहुत स्पष्ट परिचय संस्कृत साहित्य में उपलब्ध नहीं होता, परन्तु उसके संबंध में अनेकानेक तथ्य हमारी प्राचीन साहित्यात्मक सामग्री में बिखरे पड़े हैं जिनको एकत्रित करने से प्राचीन समय में संगीत शिक्षा के स्वरूप, प्रणाली व सर्वमान्य सिद्धान्तों की कुछ रूपरेखा अवश्य निर्मित हो जाती है।

वैदिक काल में संगीत शिक्षण संबंधी व्यवस्था अपने आप में संपूर्ण थी। इस काल में यह व्यवस्था इस प्रकार थी कि छात्र अपने संपूर्ण जीवन के लिए प्रत्येक स्थिति से लड़ने के लिए तैयार हो जाता था। ऐतिहासिक रूप से यदि भारतीय परंपरा को देखें तो शिक्षा का स्तर बहुत ही सुदृढ़ एवं उच्च शिखर पर रहा है। इसका पूर्ण श्रेय तत्कालीन गुरू–शिष्य–परंपरा को ही जाता है।

संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को हम देखते हैं तो यहाँ गुरू–शिष्य–परंपरा की अवधारणा अन्य क्षेत्रों से हटकर है। संगीत के क्षेत्र में गुरू–शिष्य–परंपरा संगीत शिक्षण की सबसे प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रणाली भी मानी जाती है।

प्राचीन भारत में संगीत, शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग था। संगीत की शिक्षा के बिना शिक्षा पूरी नहीं समझी जाती थी। वेदों, उपनिषदों के समय से ही संगीत शिक्षा गुरूमुख से दी जाती थी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'उपनिषद' शब्द 'उप' (निकट) 'नि' (नीचे) और 'सद्' बैठना से मिलकर बना है अर्थात्

नीचे निकट बैठना। तात्पर्य यह है कि उस समय योग्य शिष्यगण गुरू से विद्या प्राप्त करने के लिए उसके निकट बैठते थे।

गुरू–शिष्य–परंपरा सदा बहने वाले जल के समान है जिसका आदि स्त्रोत 'गुरू' होता है। गुरू समाज का ऐसा योग्यतम व्यक्ति है जो ज्ञान के संचार कार्य को निरंतर करता आया है। शास्त्रों में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति कहा गया है :–

गुरूर्बह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरूसाक्षात् परमब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

ओशो का कहना है कि – ''सबसे पहले गुरू महेश का कार्य करता है अर्थात् शिष्य के भीतर जो गलत है उसे मिटाता है या खंडहर को गिराता है। फिर ब्रह्मा की भांति नए का सृजन करता है। नए भवन के निर्माण के पूर्व पुराने का विध्वंस अनिवार्य है फिर अंततः गुरू विष्णु की तरह शिष्य को संभालता है। संगीत के क्षेत्र में भी गुरू शिष्य को एक आदर्श संस्कार का बीजारोपण करता है तथा पुराने अज्ञान, अहंकार एवं द्वेष आदि भावों को उखाड़ फैंकता है। गुरू–शिष्य को झुकने की कला सिखाता है। अतः शिष्य जब गुरू के समक्ष झुकना सीख लेता है तो धीरे–धीरे वह पूरी सृष्टि के समक्ष झुकना स्वीकार कर लेता है। फिर उस व्यक्ति के हृदय से स्वतः ही करूणा, प्रेम एवं समर्पण आदि जैसे सद्गुण प्रस्फुटित होने लगते हैं।

भारतीय संस्कृति ने 'गुरू' की महत्ता तथा आवश्यकता के संबंध में जितना उल्लेख किया गया है उतना अन्य किसी देश के साहित्य अथवा संस्कृति में नहीं मिलता। 'गुरू' दो शब्दों से मिलकर बना है 'गु' एवं 'रू' अर्थात् 'गु' का अर्थ है अंधकार एवं 'रू' का अर्थ है प्रकाश अर्थात् अंधकार को दूर करने वाला। गुरू शब्द का अभिप्राय है अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला सच्चा मार्गदर्शक। गुरू हमारे अज्ञान रूपी अंधकार की शल्य क्रिया करके हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं।

शिष्य को विद्यार्थी, छात्र आदि भी कहा जाता है। विद्यार्थी का अर्थ होता है – विद्या+अर्थी। अर्थात् विद्या को ग्रहण करने वाला विद्या व्यसनी। विद्या का अर्थ ज्ञान, शिक्षा तथा विज्ञान से होता है, जो इस ज्ञान को प्राप्त करता है, वही विद्यार्थी होता है।

वैदिक काल से ही भारतीय शिक्षण गुरूकुल पर आधारित रहा है। वैदिक काल में संगीत शिक्षा की जिस रूप में व्यवस्था थी, वह व्यक्तिगत थी संस्थागत नहीं। ये गुरूकुल जनकोलाहल से दूर एकान्त में प्रकृति की गोद में होता था। जहॉ सौन्दर्य से विद्यार्थी स्वयं ही प्रभावित हो जाते थे। शिष्य को गुरूकुल (गुरू का आश्रम या गृह) में रहकर गुरू की सेवा करके कठोर अनुशासन नियमित एवं संयमित जीवन बिताते हुए एवं सतत् साधना करते हुए गुरू द्वारा दी गई सम्पूर्ण शिक्षा को पूरा कंठस्थ करना ही शिक्षा का साधन था। संगीत शिक्षण निष्काम भाव से होता था। लाभ–हानि व द्रव्य अर्जन का कोई प्रश्न नहीं था। इसलिए गुरू और शिष्य के परस्पर संबंध बहुत अच्छे होते थे। उस काल में गुरू और शिष्य के बीच एक आदर, श्रद्धा व प्रेम की भावना निहित रहती थी। जो उनके समीप रहने के कारण और अधिक दृढ़ हो जाती थी।

वैदिक परंपरा के अनुसार गुरू–शिष्य के संबंध के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :–

ऊँ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ऊँ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।

अर्थात् ब्रह्म हम दोनों (गुरू एवं शिष्य) की समान रूप से रक्षा करें एवं दोनों को समान रूप से विद्याफल का भोग कराएँ, हम दोनों समान रूप से विद्या लाभ के लिए उपर्युक्त सामर्थ्य अर्जित करें, हम दोनों द्वारा लब्ध विद्या सफल हो, हम एक दूसरे से विद्वेष न करें, हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक–इन त्रिविध विघ्नों की शान्ति हो।

प्राचीन गुरूकुल पद्धति में शिष्यों की संख्या भले ही कम रहती थी, किन्तु जितने भी होते थे वे गुरू के प्रति पूर्ण कर्तव्यनिष्ठ एवं विश्वासी होते थे। गुरू की 'आज्ञा' उनके लिए सर्वोपरि होती थी। यही कारण था कि शिष्य भी एक से एक धुरंधर अपनी कला एवं विद्या में न केवल दक्ष होते थे बल्कि ऐतिहासिक रूप से विख्यात हो गए। जिनकी कीर्ति गुणों और कृत्यों का आज भी स्मरण किया जाता है।

इस युग में संगीत कला शिक्षा का व्यावसायिक स्वरूप नहीं था। संगीत के माध्यम से जीविकोपार्जन करना निषिद्ध था। संगीत सीखने के लिए शिष्य को कोई शुल्क नहीं देना पड़ता था। बल्कि उसका स्वभाव, एकाग्रता व कठिन साधना के प्रति तत्परता ही गुरू के प्रति सच्ची भेंट थी। उस समय गुरू का लक्ष्य विद्यार्थी की संतुष्टि के लिए रागों या तालों को सिखाना मात्र नहीं होता था, वरन् शिष्य में समस्त संगीतात्मक तथा मानवीय गुणों का आर्विभाव करना गुरू का उद्देश्य होता था। प्राचीन समय में गुरू शिक्षा के साथ–साथ सर्वांगीण विकास के प्रति भी उत्तरदायी होते थे।

विशुद्ध संगीत की साधना करके आध्यात्मिक जीवन बिताने के उद्देश्य से इस युग में संगीतकला की शिक्षा और दीक्षा दी जाती थी। शिष्य को ईश्वरतुल्य तथा संगीत को योग के समान ईश्वर प्राप्ति के श्रेयस मार्ग पर चलने का श्रेष्ठतम माध्यम समझा जाता था। स्मृति ग्रंथों में जहाँ संगीत को आत्मिक उपलब्धि का साधन माना गया वहीं सुख विलास के लिए संगीत को हेय समझा जाता था। इस युग में संगीत के सभी शास्त्रीय पक्षों का पूर्णतया पालन किया जाता था तथा सच्चे मार्ग को ग्रहण करने के सुझाव व उपदेश इन गुरूकुलों में दिए जाते थे।

शिक्षार्थी को संगीतकला के माध्यम से समाज कल्याण की भावना के साथ उसे दुष्परिणामों से बचाए रखने के यत्न किए जाते थे। संगीत साधना शांतिमय वातावरण में जीवन व्यतीत करने का सबसे सरल उपाय माना जाता था। फलस्वरूप सम्यक् शिक्षा के रूप में धार्मिक भाव की प्रबलता, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक व सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, मानसिक उन्नति, संस्कृति का प्रचार व प्रसार, ब्रह्मचर्य पालन, आदर्श व सात्विक जीवन यापन, आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, विवके, सद्भावना, नैतिककता इत्यादि प्राचीन शिक्षा (गुरू–शिष्य–परंपरा) के मूल उद्देश्य में निहित थे।